मूल्य और अन्य मामूली वन उपज को जंगलों के आर्थिक मूल्य में जोड़ा गया। वन विभाग द्वारा अनिवार्य रूप से बढ़ाई गई नियंत्रण की व्यवस्था कारण जंगल पर निर्भर लोगों द्वारा अधिक से अधिक वन अपराध और अपराध किए जाते हैं। आदिवासी नियंत्रण के तहत भूमि और जंगल, राज्य नियंत्रण और प्रबंधन के तहत लाए गए थे। औपनिवेशिक शासन के दौरान और स्वतंत्रता के बाद, भूमि के वंशाधिकार/गांव के स्वामित्व को मान्यता नहीं दी गई थी। इसके अलावा, स्थानांतरित कृषि को एक वैध कृषि पद्धति के रूप में करने की गैर-मान्यता उत्तर पूर्व को छोड़कर मौजूद थी। औपनिवेशिक राज के बाद भी भारतीय राज्य ने औपनिवेशिक नीति को विरोधाभासी रूप के साथ जारी रखा है, जिसके परिणामस्वरूप लाखों स्थानांतरित काश्तकारों का सदियों से अपने खुद के जंगलों पर कोई वैध अधिकार नहीं है।

भूमि और जंगल पर आदिवासी लोगों के पारंपरिक अधिकारों को न तो मान्यता दी गई और न ही दर्ज किया गया। वन भूमि पर राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के निर्माण ने इन समुदायों को उनके अस्तित्व के आधार से बाहर रखा। वनस्पतियों और जीवों के संरक्षण को एक तात्कालिक आवश्यकता के रूप में मान्यता दी गई थी, लेकिन वन और इसके उत्पादन के लिए आदिवासी अधिकारों का निपटान ईमानदारी और गंभीरता के साथ नहीं किया गया था, जो इसके हकदार थे और जो लोग वन भूमि का उपयोग करना जारी रखते हैं, उन्हें 'अतिक्रमणकारी' माना जाता है, उनसे वन छीन लिया गया है तथा उन्हें कोई भी सुरक्षा अधिकार नहीं प्राप्त है (मुंशी, 2013)।

3.4.1 भूमि और आजीविका का नुकसान

जबसे आदिवासियों को स्थानांतरित खेती से दूर रखा गया उनके आजीविका के स्रोत का नुकसान हुआ क्योंकि इसे व्यर्थ और विनाशकारी माना जाता था लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इसे नियमित राजस्व का स्रोत माना और इसलिए, आदिवासियों को जोतने के लिए जमीन लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया लेकिन मूल्यांकन की कम दरों पर। हालांकि, कृषि औजार की कमी, मिट्टी की खराब गुणवत्ता, लगातार फसल की विफलता और कठोर राजस्व की मांग, अक्सर किसानों, आदिवासियों और गैर-आदिवासियों, को बीज, उपभोग की वस्तुएं और यहां तक कि सरकार को राजस्व का भुगतान करने के लिए पैसे भी उन्हें ऋण की ऊंची दरों पर उन्हें लेने के लिए मजबूर करते हैं। कई हिस्सों में, ऋणग्रस्त वर्गों के लिए खेती की बढ़ती ऋणग्रस्तता और भूमि के हस्तांतरण की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। इस तरह, एक शक्तिशाली वर्ग उभरा जिसने धन-उधार, व्यापार और शराब बेचने की संयुक्त गतिविधियों के माध्यम से बड़ी मात्रा में भूमि और धन एकत्र किया। इस प्रवृत्ति ने आदिवासियों को बंधुआ मजदूरों और पट्टेदारों की स्थिति में ला दिया है। इस प्रकार, एक कम निर्वाह से, आदिवासी पूरी तरह से अपने अस्तित्व के लिए जमींदार-साहूकारों, व्यापारियों, दुकानदार पर निर्भर हो गए। धन उधार देने वाले वर्ग द्वारा शोषण और उत्पीड़न ने न केवल उन्हें अत्यधिक गरीबी की अवस्था में लाया बल्कि उनके स्वाभिमान को भी कम कर दिया।

3.4.1.1 स्वतंत्र भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

निर्भरता और बंधन के लिए आवश्यक पूर्व-स्थिति का कारण वन और भूमि और अन्य संसाधनों पर निर्वाह से आदिवासियों का विसंबंध था। 19वीं शताब्दी के अंत तक उनका विसंबंध लगभग पूरा हो गया था। देश के कई हिस्सों में, आदिवासी स्थानीय उत्पीड़कों और प्रशासकों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए गैर-आदिवासियों में शामिल हो गए। उन्होंने भूमि, वन अधिकार कम करने, भोजन की कीमत कम करने आदि की मांग की। आदिवासियों

को अलग-थलग करने से रोकने के लिए बने विधानों के बावजूद, वे अपनी जमीन और अपनी आजीविका के स्रोतों को खोते रहे।

3.4.1.2 स्वतंत्र भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

स्वतंत्रता के बाद के दशक भारत में गहन विकास योजना के दशक थे। यह औद्योगीकरण और शहरीकरण के आसपास केंद्रित राष्ट्र निर्माण के एजेंडे के माध्यम से मुख्यधारा के विकास से आदिवासी समुदायों के हाशिए पर जाने का समय भी था। इस प्रक्रिया के साथ बड़े बांधों, बड़े औद्योगिक परिसरों, बुनियादी ढांचे, बाजार के लिए खानों और जंगलों के विघटन और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण पर आदिवासी बसे हुए क्षेत्रों में बढ़ती हुई शहरी और औद्योगिक मांगों को पूरा करने के लिए जहां अधिकांश समृद्ध प्राकृतिक संसाधन, ऐसी जगह में निर्माण कार्य किया गया था। भारत में आदिवासियों पर इस प्रक्रिया का प्रतिकूल प्रभाव को उष्णकटिबंधीय जंगलों के स्वदेशी लोगों के अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन द्वारा रिपोर्ट किया गया।

यह बताया गया कि उद्योगों, खानों, नगरनिर्माण, बांधों, वन स्थानों के हानि के प्रतिकूल प्रभाव का दोष आदिवासी लोगों पर थोपा गया।

आदिवासी समुदायों ने राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि का भार वहन किया। भूमि अधिग्रहण, औपनिवेशिक कानून का एक भाग था, जो क्राउन यानि शासन के लिए भूमि का अधिग्रहण का काम करता था। यह औपनिवेशिक राज्य के हाथों में एक साधन के रूप में शक्ति थी कि वे अपने लाभों को उन्नत और अग्रिम वर्गों (मुंशी 2013) के पास ले जाएं। 10 मिलियन से अधिक लोग विस्थापित हुए और जो उनके पास था वे सभी खो गया और लाखों आदिवासी समुदायिक एवं सांस्कृतिक हत्या के कगार पर पहुंचाए गए । लगभग पूरे मध्य भारत में एक असंतोष था जो खुद को आदिवासी क्षेत्र में धकेलता पाया गया, विशेष रूप से भूमि और जंगल के मुद्दों और इन से अलग होने पर। कुछ मामलों में रुक-रुक कर लोगों और राज्य के बीच हिंसक टकराव हुआ। आदिवासी लोग भूमि और राष्ट्रीय संसाधनों पर अपने पारंपरिक अधिकारों की अवहेलना के साथ लगभग सभी मायने में अपने संसाधनों पर लगातार नियंत्रण खोते जा रहे हैं। वस्तुतः विभिन्न विकास परियोजनाओं (मुंशी 2013) के पक्ष में मजबूरन विस्थापन हुआ है।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के उपक्रमों, विकास परियोजनाओं और उद्योगों ने आदिवासियों के निर्वासन की प्रक्रिया में योगदान दिया है। जिस राज्य को उनके हितों की रक्षा करनी चाहिए, उसने उनके शोषण में बहुत योगदान दिया है। वन की कमी और विनाश ने आदिवासी समुदायों के पहले से ही नाजुक अस्तित्व के आधार को नष्ट कर दिया है। सबसे अधिक प्रभावित आदिवासी महिलाएं हैं, जिन्हें अब परिवार और उनके परिवार के ईंधन, पानी, भोजन और चारे की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए। बड़ी संख्या में आदिवासियों को मौसमी या स्थायी रूप से अन्य ग्रामीण क्षेत्रों, शहरी मैदानों या शहरों में प्रवास करने के लिए मजबूर किया जाता है, क्योंकि उनकी आजीविका के पारंपरिक स्रोतों से वंचित होने के कारण काम के अवसरों की तलाश है। वे थोड़ी सुरक्षा और संरक्षण के साथ 'असंगठित क्षेत्र के विस्तार का एक हिस्सा' चलायमान परन्तु अस्थायी श्रमिकों की एक बड़ी सेना का गठन करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि उत्तर-पूर्व के आदिवासी क्षेत्र की स्थिति मध्य और दक्षिणी भारत से भिन्न है। त्रिपुरा, असम और मणिपुर को छोड़कर, इस क्षेत्र ने औपनिवेशिक दिनों में भी अधिक प्रवास का अनुभव नहीं किया। हालांकि हाल के दिनों में, भूमि और अन्य संसाधनों

का विसंबंध हुआ है। लेकिन यह देश के बाकी हिस्सों की तरह व्यापक नहीं है, विशेष रूप से केंद्रीय जनजातीय क्षेत्र में। इस क्षेत्र के आदिवासी, पैथी के अनुसार, अपने अस्तित्व के लिए संसाधनों को नियंत्रित करते हैं। अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम और मेघालय में आदिवासी बहुसंख्यक हैं। वे यहां भी संघर्ष करते हैं, लेकिन राज्य द्वारा भूमि के अलगाव और संसाधनों के बहिष्कार के साथ उनका बहुत कम संबंध है। वे अपनी राजनीतिक भागीदारी पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। (मुंशी, 2013)।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण की नीति ने न केवल आदिवासियों को उनके प्राकृतिक संसाधनों से अलग करने की प्रक्रिया को तेज किया है बल्कि उनके लिए अधिक असुरक्षा पैदा की है। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सीमाओं पर मानव संसाधनों, वस्तुओं, वित्त और प्रौद्योगिकी के मुक्त आवागमन ने इन समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। यह देखा गया है कि आदिवासी भूमि का बड़े पैमाने पर स्थानांतरण हो रहा है। यह उन्हें अपनी भूमि से अलग करता है। वन प्रबंधन परियोजनाओं की पांचवीं अनुसूची और संरचना में संशोधन करने के लिए अब प्रयास हो रहे हैं और आंध्र प्रदेश में भारतीय तंबाकू कंपनी जैसी बड़ी निजी कंपनियों के हितों को शामिल करने के लिए संसाधन तैयार किये जा रहे हैं। जिंदलों ने अपने इस्पात संयंत्र के लिए छत्तीसगढ़ में बेनामी लेनदेन के माध्यम से आदिवासी जमीन खरीदी है। सहारा हाउसिंग लिमिटेड ने एक पर्यटन परियोजना (मुंशी, 2013) के लिए महाराष्ट्र के 3,760 एकड़ आदिवासी और वन क्षेत्रों को हड़प लिया।

सरकार ने बड़ी बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों और उनके भारतीय भागीदारों के लिए रास्ता साफ करने के लिए आदिवासी लोगों को बड़े पैमाने पर निष्कासित किया है, जो भारत में लौह अयस्क, कोयला, बॉक्साइट यूरेनियम और अन्य जैव-विविधता का दोहन करने के लिए आ रहे हैं। ओडिशा सरकार ने पहले ही 35 कंपनियों को लोहा और इस्पात उत्पादन के लिए खनन अधिकार दे दिए हैं, जिनमें पोस्को को अनुदान और बड़ी संख्या में एल्यूमीनियम कंपनियां शामिल हैं। खनन और उत्खनन ने हाल ही में बहुत ध्यान आकर्षित किया है। यह एक प्रमुख लाभ के रूप में उभरा है – उद्योग को अक्सर अपनी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए बल और धोखाधड़ी, कानूनी और अवैध साधनों का संयोजन करना पड़ता है। हालांकि, खनन क्षेत्र एक तरफ स्थानीय लोगों के बीच हिंसक राजनीतिक झड़पों का स्थान है, और दूसरी ओर निजी पूंजी और राज्य के पारिस्थितिक विनाश, आदिवासियों की पारंपरिक आजीविका का नुकसान और उनके विस्थापन का स्थान है। छत्तीसगढ़ एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें स्थानीय लोगों और पुलिस के बीच झड़प देखी गई है। वास्तव में, इस जगह ने क्षेत्र में माओवादी प्रभाव को कुचलने के लिए बड़े पैमाने पर राज्य दमन देखा है। यह बताया गया है कि स्वतंत्रता के बाद पहले साढ़े चार दशकों में, खनन ने लगभग ढाई करोड़ लोगों को विस्थापित किया था, और उनमें से 25 प्रतिशत से भी कम का पुनर्वास हुआ था। इसमें 50 प्रतिशत से अधिक आदिवासी समुदायों के थे। यह अनुमान लगाया गया था कि देश में खनन के लिए 1,64 लाख हेक्टेयर वन भूमि पहले ही हटा दी गई है (मुंशी, 2013)।

माओवादियों के नेतृत्व में आदिवासियों के विरोध प्रदर्शनों ने केंद्र के साथ-साथ राज्य के साथ-साथ निजी हितों द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों से भूमि के अवैध अधिग्रहण को जारी रखने की समस्याओं को केंद्र में लाया है और परिणामस्वरूप जनजातीय समुदायों को उनके संसाधन आधार से अलग कर दिया है। अधिकांश राजनीतिक रूप से अस्थिर क्षेत्र वे हैं जो अन्य प्राकृतिक संसाधनों में वन और समृद्ध हैं, और जो आदिवासी समुदायों के लिए घर हैं (मुंशी, 2013)।

बॉक्स 3.2: औद्योगिकीकरण का प्रभाव

संथाल बहुल क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापित होना, परिवर्तन और आधुनिकीकरण का एक और बहुत महत्वपूर्ण कारक था। इन उद्योगों ने शिक्षित और निरक्षर दोनों को रोजगार दिया और गतिशीलता का एक नया स्रोत पेश किया।

इसके अलावा, ये उद्योग एक या दूसरे धार्मिक वर्चस्व से मुक्त थे। उन्होंने जाति-मुक्त और वर्ग-मुक्त व्यवसाय को बढ़ावा दिया। बड़ी संख्या में संथालों ने उनमें रोजगार पाया। ये उद्योग, स्थानीय आदिवासियों की भर्ती कर रहे हैं। लोगों को अपने पारंपरिक संबंधों को और मजबूत करने का अवसर प्रदान किया। वास्तव में, ये उद्योग 'परिजनों की दुनिया' थी। आदिवासी-श्रमिकों द्वारा संथाल पहचान को और मजबूत किया गया।13:11)।

संविधान का पांचवां अनुच्छेद अनुसूचित जनजाति आदिवासियों को उनकी पारंपरिक भूमि और जंगलों पर पूरा अधिकार देता है और निजी कंपनियों को उनकी जमीन पर खनन करने से रोकता है। राज्य के कल्याणकारी उपायों से केवल कुछ ही आदिवासी लाभान्वित हुए हैं। युवा आदिवासी पुरुषों और महिलाओं का एक छोटा हिस्सा अपनी पारंपरिक जीवन शैली को जारी नहीं रखना चाहते हैं, लेकिन अधिकांश आदिवासियों को लगता है कि वे अपनी इच्छाओं के खिलाफ अपनी आजीविका के पारंपरिक स्रोतों से वंचित हैं। उन्हें रोजगार लेने के लिए मजबूर किया जाता है जो उन्हें जीवन की थोड़ी सुरक्षा और गुणवत्ता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार, पिछले कुछ दशकों में लाखों आदिवासी विस्थापित हुए हैं, जो विकास परियोजनाओं, औद्योगिक गतिविधियों, वन संरक्षण और विकास की प्रक्रियाओं को अनदेखा करने के लिए रास्ता बना रहे हैं। हालाँकि, ये घटनाक्रम आदिवासियों की कीमत पर हैं। राज्यों की अदूरदर्शी नीतियों ने प्राकृतिक संसाधनों और विस्थापन को नष्ट कर दिया है। आदिवासी समुदायों के अनुभवों को सर्वश्रेष्ठ रूप से 'तंत्रों की हानि' के रूप में वर्णित किया जा सकता है। विस्थापन के बाद, आदिवासियों का पुनर्वास एक दर्दनाक अनुभव है। पुनर्वास स्थलों में स्थितियाँ अक्सर इतनी लचर होती हैं कि बहुसंख्यक आदिवासी अपने गाँव, परिजन समूह, वन क्षेत्रों में लौट जाना चाहते हैं जहाँ वे संतुष्ट महसूस कर सकते हैं। वे बागान और उद्योगों में आकस्मिक श्रम के रूप में और घरेलू नौकरों, रिक्शा-चालक और अपरिचित स्थानों (मुंशी, 2013) में निर्माण श्रमिकों के रूप में काम करने के लिए वे अपने पुनर्वास से बाहर रहना भी पसंद कर सकते हैं।

3.4.2 अधिनियम और प्रतिरोध

देश के सामने पर्यावरणीय समस्याओं के बारे विशेष रूप से हमारे वन संसाधनों के ह्वास में देर से जागरूकता बढ़ी है, संसाधनों और संसाधनों की कमी और अभाव के कारण आदिवासी समूहों के बीच संघर्ष और तनाव बढ़ रहा है। (गुहा, आर. 2013)।

आदिवासी अधिकारों को पूर्ण करने के कार्य और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण खोने से होने वाले नुकसान ने आदिवासी वन समुदायों से एक तीव्र प्रतिक्रिया पैदा की है। वन प्रशासन के शुरुआत से ही जंगलों के सवाल पर, जंगलों के आसपास केंद्रित विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह हुए हैं। उदाहरण के लिए, गढ़वाल में, 1913 में वनों का आरक्षण, 1916 और 1921 में व्यापक सामाजिक आंदोलनों के बाद, पहला गैर-सहयोग आंदोलन था, जिसमें गढ़वाल और कुमाऊं के बड़े क्षेत्र शामिल थे। इन उतार-चढ़ावों ने सरकार को बड़े वन क्षेत्रों को आरक्षित करने के लिए मजबूर किया।

वन प्रतिबंधों के कारण आदिवासी लोगों के बीच जो असंतोष उभरा उसने ग्रामीणों की अनिच्छा होने पर भी वन संरक्षण (गुहा, आर. 2013) के कार्य में वन विभाग के साथ सहयोग करने में व्यक्त हुआ।

कई क्षेत्रों में राज्य ने ग्रामीणों द्वारा उपयोग के लिए बस्ती के तहत गांव के जंगलों के रूप में कुछ जंगलों को बनाया है, लेकिन जंगलों के सामुदायिक स्वामित्व के नुकसान ने प्रभावी रूप से आदमी और जंगल के बीच की कड़ी को तोड़ दिया है। जंगल से आदमी के इस अलगाव की तुलना उत्पादन के साधन से अलग किए जा रहे प्राथमिक उत्पादक के अलगाव से की जा सकती है। नतीजतन, टिहरी गढ़वाल में शताब्दी के शुरुआती वर्षों से छिटपुट वन आंदोलन हुए। संघर्ष और संघर्ष के इस इतिहास को अनिवार्य रूप से अलगाव, संपत्ति के अधिकार और दायित्व द्वारा निकलते हुए देखा जा सकता है (गुहा, आर. 2013)।

3.4.3 भूमि के मुद्दे पर नए तरह का संघर्ष

जमीन के मुद्दे पर संघर्ष का एक नया रूप कुछ आदिवासी समुदायों के भीतर शुरू हुआ है जहाँ आदिवासी महिलाएँ जमीन पर मालिकाना हक पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। आदिवासियों/आदिवासी महिलाओं को भूमि अधिकारों से वंचित करना बहुत चिंता का विषय रहा है। किश्वर द्वारा हो आदिवासी समुदाय पर अध्ययन (1987: 200) का तर्क है कि हो पुरुषों का भूमि और अन्य आय सृजन गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ गया है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के परिवार की आजीविका में अधिक से अधिक योगदान के बावजूद ''हो'' महिलाओं का अधिक शोषण हुआ है। बिहार के संथाल जैसे आदिवासी महिलाओं के उदाहरण हैं, जिन्हें आदिवासी समुदाय के पुरुषों द्वारा जमीन के अधिकार के लिए लड़ने के लिए एक अभियान शुरू करने के लिए समर्थन दिया जाता है (मुंशी, 2013)।

3.4.4 जनजातीय अशांति

वनों के शोषण में वृद्धि के साथ, वन जनजातीय समुदायों ने अपने निवास स्थान पर अपने नियंत्रण खोने के नुकसान का अनुभव किया है। यह अभाव आंदोलनों की एक श्रृंखला में प्रकट हुआ है जो पचास और साठ के दशक में रुक-रुक कर बार-बार हुये। वर्तमान में हम अधिकांश क्षेत्रों में अशांति पाते हैं। उत्तर में उत्तराखंड से लेकर पूर्व में झारखंड और पश्चिम में ठाणे धूलिया तक इन आंदोलनों का अध्ययन किया गया है। तेजी से उग्रवादी संघर्ष भूमि और जंगल पर सामुदायिक नियंत्रण हासिल करने के सवाल पर केंद्रित है। राज्य की प्रतिक्रिया में वृद्धि हुई है, इन आंदोलनों को दबाने के लिए सशस्त्र बल का उपयोग किया गया है जैसा कि 1980 की गुआ फायरिंग के मामले में था। राज्य ने सशस्त्र बलों, वन विभाग और पुलिस नौकरशाही को अधिक अधिकार दिए हैं। (गुहा, आर.2013)।

3.5 सारांश

इस इकाई में आपको भारत में आदिवासियों की स्थितियों का पता चला। जनजातियों के अर्थ और विशेषता का वर्णन किया गया था। उनके पास प्राकृतिक संसाधनों के साथ अपने मिथक, लिंग, समस्याएं और पहचान की भावना है। हमने बताया कि कैसे विकास कार्यक्रमों ने आदिवासी समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, जिसमें उनके कृषि के पारंपरिक तरीके स्वरूप और उनकी आजीविका के प्राकृतिक स्रोत भी शामिल हैं। आरक्षित वन के बड़े पथों के बाड़ के द्वारा सीमांकन ने आदिवासी वनवासियों को उनके आवास और उनके अस्तित्व के संसाधनों पर नियंत्रण के प्रभावी नुकसान पहुंचाया है। आदिवासी समुदायों और उनके

प्राकृतिक संसाधनों के आधार, उनके कौशल, प्रथाओं, परंपराओं, ज्ञान, योग्यता और इच्छाओं का विकास अवरुद्ध हुआ है।

बोध प्रश्न 3

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में आदिवासी लोगों की प्रमुख आजीविका जागरूकता के बारे में संक्षेप में बताएं। दस पंक्तियों का उपयोग करें

.....

.....

.....

.....

.....

2) भूमंडलीकरण की प्रक्रिया जंगलों में रहने वाली जनजातियों को कैसे प्रभावित करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 संदर्भ

बेली, एफ.जी. 1961. भारतीय में 'जनजाति और भारत में जाति', नागरिक शास्त्र , वॉल्यूम -5। पृ.7-19.

घुर्ये, जी.एस. (1963). अनुसूचित जनजाति, लोकप्रिय प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, बॉम्बे।

हेमेन्दोर्फ , सी.वी.फ. C.V.F. (1977). भारत में जनजातीय समस्याएं भारत में जाति और धर्म में संपादन द्वारा रोमेश थापर मैकमिलन, दिल्ली।

कायरप साराप 2017। मध्य भारत के जनजातीय बेल्ट में संसाधन, गरीबी और सार्वजनिक कार्रवाई तक पहुंच का क्षरण। समाजशास्त्रीय बुलेटिन 66 (1) 22 पृ. 41। भारतीय समाजशास्त्रीय समाज, साधु प्रकाशन।

मुंशी, इंद्र। 2013. आदिवासी प्रश्नः भूमि, वन और आजीविका के मुद्दे, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली।

पुरकायस्थ, नबरुन, 2016. भारतीय जनजाति की अवधारणाः एक सिंहावलोकन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज वॉल्यूम 5,. नंबर 2, फरवरी 2016

गुहा, रामचंद्र 2013: ब्रिटिश और वानस्पतिक भारत में वानिकी: एक ऐतिहासिक विश्लेषण।

टीबा, आर, (संपादन) 2010. पूर्वोत्तर भारत और विकास की अनुसूचित जनजाति, बी. आर, प्रकाशन निगम, दिल्ली।

ठाकुर, शीतल 2012, भारतीय जनजातियों के सामाजिक समावेशन और बहिष्करण का मुद्दा, कला, प्रबंधन और मानविकी पर अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 1 (1): 14-19 (2012)

खाका, वर्जीनियस 1999. भारत में जनजातियों का परिवर्तन: प्रवचन की शर्तें। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक। वॉल्यूम। 34, नंबर 24 (जून 12-18, 1999), पृ. 1519-1524.

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) यह शब्द लैटिन शब्द 'ट्राइबर्स' से लिया गया है, जो एक निवास स्थान को संदर्भित करता है। यह उन लोगों के एक समूह को गाता है जो एक समुदाय से संबंधित है जो एक आम 33 से एक सामान्य वंश का दावा करते हैं। वे सभी एक ही भाषा, सांस्कृतिक विशिष्टता और सापेक्ष बाहरीपन को साझा करते हैं।

2) एकता की भावना और एक सामान्य बोली जनजातियों की दो प्रमुख विशेषताएं हैं।

बोध प्रश्न 2

1) आदिवासी लोगों को विशेष रूप से मध्य भारत से संबंधित भूमि के अलगाव और विकास की बहुत प्रक्रिया में आजीविका के अपने पारंपरिक स्वरुप के विघटन का सामना करना पड़ा क्योंकि औद्योगिक और खनन जैसी बड़ी परियोजनाओं ने भूमि ने उनके प्रवेश को रोक दिया।

3) मध्य भारत में कोई भी आदिवासी औपनिवेशिक काल के साथ-साथ समकालीन समय के दौरान वन भूमि तक पहुंचने के अपने पारंपरिक अधिकारों को नहीं खोता था।

बोध प्रश्न 3

1) कुछ आदिवासी शिकार और भोजन एकत्र करने पर रह रहे थे, लेकिन बहुसंख्यक लोग कृषक और खेतिहर मजदूर थे। कई लोग घरेलू उद्योग, खनन कार्य, वृक्षारोपण आदि में लगे हुए थे।

2) स्वतंत्र भारत में वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रियाओं ने उन आदिवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिनके वन ऋणों पर प्रथागत अधिकार उन्हें वंचित और उनके पर्यावरण से वंचित और विस्थापित कर दिया गया था। वे या तो मजदूरों/नाबालिगों /अधिवासियों आदि के रूप में काम कर रहे थे या शहरों और अन्य क्षेत्रों में प्रवास के लिए मजबूर थे जो आजीविका के स्रोत की तलाश कर रहे थे।